PhD
11415

शास्त्रीय तथा उपशास्त्रीय संगीत के परिप्रेक्ष्य में

राजस्थानी लोक संगीत " मांड " का स्थान

एवम्

विभिन्न क्षेत्रों के " मांड " गायन शैली का तुलनात्मक अध्ययन।

D.K. Bhosle
Prof. D.K. Bhosle

Pandit Ishwarchandra
Head
Deptt. of Music (Vocal & Tabla)
Faculty of Performing Arts,
M.S. University of Baroda

Dean
Faculty of Performing Arts
M. S. University of Baroda.

विषयानुक्रमाणिका

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना ।

लोक संगीत ।

लोक संगीत का उदभव् एवम् विकास ।

राजस्थान का लोक संगीत ।

राजस्थान के लोकगीत पर क्षेत्रीय, भौगोलिक एवम् ऐतिहासिक प्रभाव ।

लोकगीतों का वर्गीकरण ।

द्वितीय अध्याय

शास्त्रीय व उपशास्त्रीय संगीत के परिप्रेक्ष्य में मांड व उसकी सौन्दर्यात्मकता ।

शास्त्रीय संगीत - ध्रुवपद धमार ख्याल आदि विभिन्न अंग ।

उपशास्त्रीय संगीत - ठुमरी, टप्पा, कजरी, होरी, चैती, " राजस्थानी मांड " ।

मांड, राग स्वरुप, स्वर लगाव, कण, मुर्की, हलक, साखी, मांड गायकी में लयकारी का स्थान ।

तृतीय अध्याय

राजस्थानी लोक संगीत मांड । मांड का विकास ।

मांड गायन की विभिन्न जातियां व क्षेत्रीय प्रभाव एवं आकार प्रकार ।

चतुर्थ अध्याय

मांड गायकी की परम्परा

जन जीवन पर प्रभाव

वर्तमान मांड गायकी का महत्व

पंचम अध्याय

मांड गीतों का वर्गीकरण व कुछ विशेष लोकगीतों की स्वर लिपी ।

षष्ठम अध्याय

वर्तमान मांड गायकों का साक्षात्कार एवम् ऑडियो रिकार्डिंग्स् ।

हमारे देश भारत वर्ष की सांस्कृतिक धरोहर लोक संगीत विशेषकर राजस्थान के लोक संगीत पर बहुत अध्ययन एवं शोध कार्य हुआ है ।

लोक सगींत की समृद्ध परम्परा की गहनता की कोई सीमा नहीं है ----- जितना हम इसे जानना चाहते हैं उतना ही हम इसमें डूबते चले जातें हैं । संगीत की साधक होने के नाते मुझे लोक संगीत में विशेषकर राजस्थान के लोक संगीत और उसमें भी मांड गायकी में विशेष अभिरुचि एवं उत्कंठा है । वर्तमान समय में कमर्शियल गायकी के दौर में अथाह लालित्य लिए मांड की गायकी का स्वरुप, ऐतिहासिक स्वरुप एवम् कलात्मकता के परिप्रेक्ष्य में शोध के लिए एक सार-गर्भित एवं रस-प्रद विषय है ----

: प्रस्तावना :

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, समाज की बहुमुखी गतिविधियाँ ही मानव के अस्तित्व का मूल हैं । प्रत्येक क्षेत्र में जितना ज्ञान व पारंगत्व है, उससे अधिक पाने की लालसा ही मनुष्य मात्र का विकास है, यही विकास मानव जाति को प्राणी जगत में विशिष्ट एवं अनन्य स्थान प्रदान करता है ।

वस्तुतः कला जीवन का विनम्र सौन्दर्य है, तत्वज्ञानी " रस्किन " ने जहाँ कला को जीवन बताया है वहीं उन्होंने यह स्वीकार किया है कि प्रत्येक महान् कलाकार ईश्वर कृति के प्रति मानव के अहलाद् की अभिव्यक्ति है । कला का उद्देश्य जीवन के पूर्णत्व को प्रदान करना हैं । कलाएँ प्राणी मात्र के आनन्द का स्त्रोत है । संगीत तो वह उत्कृष्ट माध्यम है, जिसमें डूब कर व्यक्ति अपना सम्पूर्ण अस्तित्व ही भूल जाता है । भावों की अभिव्यक्ति के इस सशक्त माध्यम को माधुर्य के साथ समन्वय कर देने पर एक विशिष्ट रचना का निर्माण होता है जो संगीत है ।

आदिमकाल से ही संगीत मनुष्य के अन्तःकरण में निहित है । मनुष्य विभिन्न ध्वनियों के माध्यम से ईश्वर की वन्दना, अर्चना करता था । पुरातन काल से ही

सौन्दर्य से विमुग्ध मानव मन में यही उद्गार संगीत के रुप में सृष्टि पर प्रस्फुटित हुए ।

संगीत द्वारा भावाभिव्यक्ति के माध्यम की ओर आयें तो हम मुख्य रुप से संगीत की दो विधाएँ पातें हैं - शास्त्रीय संगीत एवम् लोक संगीत ।

साधारण शब्दों में कहा जाए तो शास्त्रीय संगीत शास्त्र के नियमानुसार पेश किया जाता है, इसमें स्वर राग एवम् ज्ञानपक्ष की प्रधानता रहती है, शास्त्रीय संगीत में सिद्धान्तो का पालन करना पड़ता है, शास्त्रीय संगीत में ज्ञानपक्ष व शास्त्रीयता पर विशेष व भावपक्ष पर कम ध्यान दिया जाता है व लोक संगीत में शास्त्रपक्ष पर कम और भावपक्ष पर विशेष ध्यान दिया जाता है, लोक संगीत में निरागस, निष्पाप सरलता एवं सहजता है । शास्त्रीय संगीत में साहित्य का महत्व कम है जबकि लोक संगीत में साहित्य या काव्य का बड़ा ही महत्व है । शास्त्रीय संगीत शिस्तबद्ध है साथ साथ ही अपितु उससे पूर्व से ही जन साधारण की दैनन्दिनी में बसे संगीत का भण्डार समृद्ध होता ही रहा, इसे लोक संगीत के रुप में माना जाता है सच माना जाए तो संगीत के शिस्तबद्ध रुप की व्युत्पत्ति का उदगम् इसी बृहद और सर्वांगीण लोक संगीत में से लौकिक क्रियाओं को अपने में समावेश करके और लोकाचार में रस भरता संगीत लोक संगीत है ------ जिसकी विशालता का पार नहीं है, आईये लोक संगीत को विस्तार - पूर्वक जानें -------

<u>लोक संगीत :</u>

लोक संगीत अर्थात लोक + संगीत, सामाजिक प्राणी और संगीत, जिसमें कोई शास्त्रीय बन्धन ना हो, शब्दों की क्लिष्टिता ना हो, तथा किसी प्रकार के मनुष्य निर्मित सिद्धान्त का पालन ना करना पड़े, जो कि साधारण जन सामान्य का संगीत हो ।

लोक शब्द क्या है, इसकी उत्पत्ति कब और कैसे हुई इसके सम्बन्ध में कुछ कहना मुश्किल है, परन्तु कालान्तर में लोकशब्द का अर्थ साधारण जन समाज ही

है । जिसमें हमारी सभ्यता संस्कृति समाहित है, और प्रकृति के नियमानुसार परिवर्तनशील है ।

लोक संगीत अर्थात लोक का या लोक में व्याप्त संगीत, लोक के देश परिवेश से विशेष सम्बन्धित होता है अतः वह स्वाभाविक बन जन मन रंजन करने की, जीवन के दुख, निराशा हरने की अदम्य शक्ति भी रखता है । भारतीय संगीत में शास्त्रीय संगीत तथा अन्य विधाओं की तरह लोक संगीत एक सम्पूर्ण विधा है ।

जिस प्रकार वर्तमान में शास्त्रीय संगीत का अपना महत्व है उसी प्रकार लोक संगीत साधारण जन समूह का संगीत होते हुए भी अपने आप में स्वतन्त्र अस्तित्व लिए हुए है । इसे समझने के लिए शास्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती । यह लय व तालबद्ध होकर उन्मुक्त भ्रमण करता हैं । लोक गीत प्राणी मात्र की धरोहर नहीं होते हुए समाज द्वारा उत्पन्न अपने पूर्वजों की विशेषताएँ लिए हुए पीढ़ी दर पीढ़ी गुजाएँमान होतें हैं ।

लोक जीवन की अकृत्रिमता से परिपूर्ण मानव हृदय के भावों :- आशा - निराशा, सुख - दुख, हर्षोल्लास, संयोग - वियोग, रागद्वेष, आमोद - प्रमोद, कामना, स्नेह - ईर्ष्या, मंगल - अमंगल, संस्कार एवं जीवन - मरण तक की सामाजिक परम्पराओं को व्यक्त करते हैं ।

लोक गीत समाज का दर्पण हैं । इनके द्वारा हम देश के, प्रांत के, रहन - सहन, रीति रिवाज, वेश - भूषा, खान - पान, का परिचय प्राप्त कर सकतें हैं । सहज व सरल शब्दावली होते हुए भी धुन छोटी होती है परन्तु शब्दों का अर्थ विशालता लिए हुए होता है । भारतीय संगीत की विशेषता है कि यहाँ पर संगीत के विविध रुप दृष्टि गोचर होते हैं । इसी कारण बंगाल, पंजाब, महाराष्ट्र, राजस्थान या अन्य किसी भी प्रांत का संगीत अपने आप में भिन्नता व विशेषता लिए हुए होता है ।

श्री सत्येन्द्र सत्यार्थी जी के अनुसार " **भारतीय जीवन का सफल चित्रण भारतीय लोक गीतों के अध्ययन के बिना सम्भव नहीं है** " ।[१]

<u>लोक संगीत का उद्‌भव और विकास :-</u>

कब और कैसे हम लोक संगीत शब्द से परिचित हुए ---- यह एक गहन प्रश्न है । इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं । " **ऋग्वेद में देहि लोकम् का प्रयोग हुआ है, यहाँ लोकम् का प्रयोग स्थान के लिए है ----- वेदों में लोक दो प्रकार के माने हैं ---- पार्थिव और दिव्य, किन्तु " ब्राह्मण ग्रन्थ " " बृहदारण्यक उपनिषद " एवम् " बाज सनेही संहिता " आदि में लोक के सम्बद्ध में ऐसा कोई मतभेद दिखाई नहीं देता है** " ।[१]

कुछ विद्वानों के अनुसार लोक संगीत की उत्पत्ति आदिकाल में अशिक्षित मानव द्वारा की गई । भावों को व्यक्त करने के लिए उस समय जिस भाषा का प्रयोग वो करते थे उसी में उन्होंने गीतों का निर्माण किया । मानव के शिक्षित व सुसभ्य होने के साथ साथ यह गीत नये - नये रुप लेते गये । चाहे वो खेतों में हरियाली का वर्णन हो, या फिर बसंत ऋतु का वर्णन हो कोयल की कूक हो या पपीहे की पुकार का वर्णन हो या फिर जीवन शैली दर्शाते गीत ।

अन्य मतानुसार किसी जन समुदाय द्वारा लोक गीतों का निर्माण उत्स्फुर्त हुआ होगा - पीढ़ी दर पीढ़ी यह सिलसिला चल रहा है और चलता रहेगा ।

" **हिन्दी में लोक गीतों के प्रथम संकलन कर्ता श्री राम नरेश त्रिपाठी जी ने लोक साहित्य के स्थान में ग्राम साहित्य का प्रयोग अधिक किया** " ।[२] त्रिपाठी जी ने करीब १९२४ में गीतों का संकलन किया तथा वो इन्हें ग्राम गीत ही कहते थे ।

❖ १. लोक गीतों का विकासात्मक अध्ययन ----- डा. कुलदीप पृ.सं. - ४ ।

❖ १. लोक गीतों का विकासात्मक अध्ययन - डा. कुलदीप

❖ २. लोक साहित्य और संस्कृति - दिनेश्वर प्रसाद जी

सन १९४० ई. (हिन्दी में) " लोक गीत " शब्द का प्रचलन हुआ, परन्तु मराठी और गुजराती में इससे पूर्व ही " लोक गीत " शब्द प्रचलित हो चुका था ।

राजस्थान का लोक संगीत :

भारत के पश्चिमी भाग को राजस्थान के नाम से जानते हैं । राजस्थान प्रदेश की सीमाएँ पंजाब, हरियाणा, उत्तर-प्रदेश, मध्यप्रदेश, गुजरात से मिलती हैं । क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान राज्य अपना द्वितीय स्थान रखता है । राजस्थान के उत्तर पूर्व में पंजाब, पूर्व में उत्तर प्रदेश, दक्षिण में मध्यप्रदेश और गुजरात की सीमा स्पर्श करती है ।

इतिहास में राजस्थान को मरु प्रदेश के नाम से जानते थे विभिन्न भागों में राजस्थान विभक्त था, व भिन्न - भिन्न नाम थे । अंग्रेजों ने अपनी सुविधानुसार भू - भागों को वर्णित कर इस स्थान का नाम राजपूताना रखा, यहाँ राजपूतों का आधिक्य था । " कर्नल टॉड " कृत पुस्तक का नाम " राजस्थान " था, इस प्रदेश को इसी नाम से जाना जाने लगा । " राजपूताना " अधिक प्रचलित नहीं हुआ । इसके अन्तर्गत इन्होंने इक्कीस राज्य रखे । उदयपुर, डूंगरपुर, कोटा, बांसवाडा, जयपुर, प्रतापगढ़, शाहपुरा, करौली, जैसलमेर, बीकानेर, किशनगढ़, झालावाड, भरतपुर, धोलपुर, पालनपुर, टोंक, अलवर, सिरोही, जोधपुर, दातां, भरतपुर ।

विविधताओं के बहु आयामों को स्पर्श करते हुए राजस्थानी लोक समुदाय सांस्कृतिक परिवेश में अपना अहम् स्थान दर्शाता है । राजस्थान की प्रजा समाज के नियमों का पालन करते हुए समाज को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में बाँधे हुए है व अपने पूर्वजों के आदर्शों, संस्कारों को लेकर आगे बढ़ने में विश्वास रखती है । सादा जीवन उच्च - विचार रखने वाले इन लोगों का व्यवसाय खेती करना है ----- पशुधन को महत्व देते हुए अपना जीवन यापन शांत व साधारण रुप से व्यतीत करना पसन्द करतें हैं । अपने पारिवारिक जीवन की अत्यन्त मनोहर कल्पनाएँ गीतों द्वारा व्यक्त करते है ।

भिन्न - भिन्न क्षेत्र में रहने वाले इन लोगों की जीवनचर्या अपने क्षेत्र की भौगोलिक स्थिती के अनुसार बनती रही व उनके गीतों पर भी वहाँ की भौगोलिक स्थिती का प्रभाव बना रहा । प्रत्येक क्षेत्र के विशिष्ट क्षेत्रीय आयाम रहें हैं ---- जो वहाँ के लोक जीवन में घुले मिले रीतिरिवाजों एवं उनसे जुड़ी समस्त क्रियाओं को सरस बनाते लोक गीतों में अभिव्यक्त हो रहे हैं ----- जिन्हें हम क्षेत्रीय प्रभाव की श्रेणी में रख सकते हैं ।

इन गीतों को हम अपनी सुविधानुसार चार भागों में विभक्त कर सकते हैं ।

पारिवारिक गीत ।

सांस्कृतिक गीत ।

धार्मिक गीत ।

विविध प्रकार के गीत ।

(सारिणी संलग्न)

मनुष्य के कोमल भाव गीतों के माध्यम से प्रस्फूटित होते हैं ये मानव मन की भावनाओं को प्रतिबिम्बित करते हैं । भाई बहिन के निच्छल प्रेम के कोमल गीत हों या ममता एवं वात्सल्य गीत, नायक नायिका के श्रंगारिक गीत इन सभी को हम पारिवारिक गीत मानते हैं । हमारी हिन्दु संस्कृति में १६ संस्कारों को मान्यता दी गई है । बालक के जन्म से मृत्यु तक के गीत हमें सुनने को प्राप्त होतें है इन गीतों में बालक जन्म, नामकरण, उपनयन संस्कार, वर्षगांठ, विवाह (बन्ना, बन्नी, रतजगा, हल्दी चढ़ाना, सेहरा, भात, ज्यौनार, कुवॅर कलेवा, पालिकाचार, विदाई, आदि) मृत्युगीत आदि आते हैं । मानव प्रारम्भ से ही ईश्वर का उपासक रहा है, ईश्वर के प्रति आस्था को गीतों के द्वारा व्यक्त करता आया है, त्यौहार, उत्सव, पर्व तो भारतीय संस्कृति में प्रवाहमान हैं तो राजस्थान उस खूबसूरती से अछूता कैसे रह जाए, यहाँ के विभिन्न मेले - तीर्थराज - पुष्कर का मेला, कैला देवी का मेला, शीतला माता का मेला राजस्थानी तीज व गणगौर का अपना अलग ही महत्व है ।

इन पर्वो और उत्सवों के बिना तो ऐसा प्रतीत होता है मानो राजस्थानी परम्परा अधूरी है ----- उदाहरणार्थ गणगौर के इस गीत में अत्यन्त मनोहारी वर्णन हमें प्राप्त होता है :-

खेलण दयो, गणगौर, भवॅर म्हने पूजण दयो गणगौर ।

म्हारी सहेल्याँ जोवे बाँट भवर म्हने पूजन दयो गणगौर ।।

इसी प्रकार लोक जीवन में विभिन्न ऐसे स्थान हैं जो जीवनशैली को स्पष्ट दर्शाते हैं ------ वो चाहे श्रम करते समय गाए जाने वाले गीत ----- चक्की पीसते, पानी भरते, खेत में काम करते इत्यादि हों या ऋतुओं का वर्णन सभी में मानव जीवन की स्पष्टता चित्रित होती है ।

यद्यपि राजस्थान का लोक संगीत राजस्थान की सभ्यता के अनुसार ही पारम्परिक तथा वैभव शाली है तथापि बीसवीं शताब्दी में भारतीय संगीत के सभी क्षेत्रों के अनुसार राजस्थान के लोक संगीत में भी अनेक परिवर्तन आये इस बदलते सांगीतिक परिवेश में सामान्य जन-समाज की समूची रुचि और संस्कृति में अन्तर बाह्य परिवर्तन आया । संगीत एक कला होने के नाते नित्य ही नवीनता का परिष्कार करते हुए वेगवती सरीता के समान प्रवाहित है, परिश्रमी व साधक कलाकार उसके प्रवाह में नये आयाम देते रहते है अतः उसमें जीवन बना रहता है । यह परिवर्तन कुछ कुछ प्रतिभाशाली गायकों के चिन्तन और परिश्रम का परिणाम है ।

शास्त्रीय व उपशास्त्रीय संगीत के परिप्रेक्ष्य में मांड व उसकी सौन्दर्यात्मकता :

वैदिक युग संगीत के इतिहास का प्रथम युग माना जाता है, हमारी संस्कृति का सूर्योदय यज्ञ, सामगान, मन्दिरों के वेद पाठ मंगल वाद्यों की मधुर नाद से प्रारम्भ होता है । नाद को प्रत्यक्ष " नाद ब्रह्म " के रुप में माना गया है । सम्पूर्ण जगत नाद के आधीन है । भरत काल में संगीत की जो क्रिया प्रचलित थी उसको नाटय् शास्त्र में जाति के अन्तर्गत विभाजित किया, वाद्यों के स्वर, श्रुति, ग्राम मूर्च्छना, गृह अंश, न्यास व विभिन्न प्रकार की वीणा तथा उसकी वादन विधि तथा अनेक तालों का

विवरण आदि वर्णित है । रागों का उल्लेख सर्वप्रथम मतंग कृत बृहद्देशीय में प्राप्त होता है इसी काल में सर्वप्रथम राग-रागिनियों का वर्णन मिलता है ।

नारद द्वारा ८०० ई. में नारदीय शिक्षा ग्रन्थ लिखा गया इस ग्रन्थ में स्वरों के महत्व को दर्शाते हुए ७ ग्रामों का उल्लेख है । डॉ. राघवन द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि इस समय रागों का विकास व प्रचार हो चुका था । इसके बाद भारतीय संगीत के इतिहास में मध्ययुग का आरम्भ माना जाता है ।

संगीत कला की दृष्टि से मुगलकाल स्वर्णिम युग माना गया है । राजकीय संरक्षण प्राप्त होने के कारण संगीत कला फलती - फूलती रही उपशास्त्रीय संगीत - ठुमरी, सावनी, टप्पा, कजरी, होरी, चैती आदि गीत प्रकार का विकास इसी काल की देन है ।

उपशास्त्रीय संगीत ----- हमें नाम से ही विदित होता है कि हमें शास्त्रीय नियमों का पालन कम करना होता है रागों पर आधारित होते हुए भी स्वर पक्ष ध्यान में रखते हुए शब्दों के लगाव पर विशेष ध्यान दिया जाता है -- उपशास्त्रीय संगीत में स्वर-राग पक्ष कम एवं नियमों की जटिलता भी कम होती है । इस प्रकार के संगीत में ज्ञान पक्ष से ज्यादा भाव पक्ष, और काव्य का महत्व अधिक हो जाता है । --- ठुमरी ऋंगारिकता से परिपूर्ण होती है, शब्दों को हाव-भाव द्वारा बता कर ठुमरी को स्पष्ट किया जाता है, इसी तरह दादरा --- यह एक ताल का नाम भी है और गायकी भी है । टप्पा गायकी भी उपशास्त्रीय संगीत की एक कड़ी है, टप्पा गायकी में श्रंगारिकता की प्रधानता रहती है, इसमें तानें गायी जाती हैं --- यह एक चपल गति का गीत प्रकार है ।

कजरी - होरी - चैती - " मांड " - कजरी के गीतों में वर्षा ऋतु का वर्णन, विरह वर्णन, तथा राधाकृष्ण की लीलाओं का वर्णन हमें प्राप्त होता है । होरी धमार

ताल में गाई जाती है, होरी में प्रायः राधाकृष्ण के गीत व ब्रज की होली का वर्णन अधिक मिलता है, इसमें दुगुन - चौगुन तथा विभिन्न लयकारियों के साथ साथ, उपज अंग, बोलबाट भी गाते हैं । चैती भी इसी प्रकार की गायकी है इसमें भगवान राम की लीलाओं का वर्णन अधिक होता है। होरी में. ब्रजभाषा का प्रयोग अधिक होता है चैती में पूर्वीभाषा का प्रयोग अधिक होता है ----

इसी प्रकार " मांड " गायकी राग पर आधारित होते हुए राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा लिए लोक संगीत की श्रेणी में सम्मिलित है ।

" मांड " " बिलावल थाठ से उत्पन्न एक सम्पूर्ण राग है । इसमें दोनों निषाद शेष स्वर शुद्ध लगते हैं । कुछ लोग आरोह में केवल ऋषभ को और कुछ ऋषभ व निषाद दोनों स्वर को वर्जित कर देते हैं, अवरोह सम्पूर्ण है । वादी षड्ज् एवं संवादी पंचम है । मध्यम व धैवत बढ़ाने पर राग खिल जाता है । यह किसी भी समय गाया जा सकता है । यह एक धुन की भांति का राग है । " [१]

मांड :

यह शब्द राजस्थानी मांडना का पर्याय है, मांडना अर्थात सजाना संवारना या फिर हम कह सकतें हैं बनाना उदाहरणार्थ दीवारों पर चित्र बनाना यानि मांडना, महेन्दी मांडना, अल्पना मांडना ।

इन्हीं शब्दों से गायन में मांड शब्द का प्रयोग हुआ जो कि स्पष्ट है --- स्वरों को मांडना ।

राजस्थान में मांड राग का अपना ही महत्वपूर्ण स्थान है। कहा जाता है कि मांड राग की उत्पत्ति जैसलमेर में की गई । राजस्थान में " दूहा " छन्दों को मांड में अधिक गाया जाता है ।

❖ १. संगीत विशारद - श्री बसन्त जी - पृ.सं.३१३

राजस्थान में हर दस कोस पर हमें प्रायः भाषा का परिवर्तन मिलता है अतः क्षेत्र के परिवर्तन से भाषा में परिवर्तन सहज बात है । भाषा में अन्तर आते ही गीत के बोलो के उच्चारण में अन्तर आना तो स्वाभाविक ही है ।

उच्चारण के परिवर्तन से गायकी की छटायें भी बदलती हैं और हर क्षेत्र की अपनी अपनी अनूठी गीत - कृतियां देखने को हमें मिलती हैं ।

जैसा की हम जानते हैं मांड का अर्थ " मांडना " होता है --- भावों को भाषा व उच्चारंण के धागों में पिरोकर भांति - भांति की गायन कला की बारीकियों के साथ प्रस्तुत करना मांड गायकी की अनूठी विशेषता है ।

विभिन्न जातियों में (लंघा, मांगणियां, ढोला, चारण भाट, आदि) मांड गायकी को उनके अपने रीति-रिवाजों और भाषा के अनुसार भिन्न - भिन्न स्वरुप प्रदान किया गया है ।

मांड गायकी पर क्षेत्र, भाषा के बदलाव जाति, रीति - रिवाज आदि सभी का भरपूर प्रभाव हमें देखने को मिलता है ।

कालान्तर में राजस्थान में मांड को लोक गायकी के रुप में जाना जाता है तथा लोक गायकों द्वारा इसे अत्यन्त मधुर एवं श्रृंगारमयी भावों से व्यक्त किया जाता है । संगीत में भावों का अपना ही महत्वपूर्ण स्थान है। भावों को व्यक्त करने का सशक्त माध्यम संगीत है --- चाहे वो श्रृंगार रस से परिपूर्ण हो या वीर रस से। मांड भी भावाभिव्यक्ति की एक मधुर सुहाबनी गायकी है । इसे घुमा घुमा कर विभिन्न तरीकों से गाया जाता है, तब उसकी मधुरता, मादकता श्रोताओं को मुग्ध किए बिना नही रह सकती ।

एक ओर इस गायकी में देश प्रेम व धरती माँ के गुणों को गायकों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है वहीं दूसरी ओर नायिका के भिन्न - भिन्न भावों को गायक द्वारा व्यक्त करने का प्रयास किया जाता है ----

गायक द्वारा नायक का नायिका से दूर जाने का वर्णन सहज शब्दों में किया जाता है यह अत्यन्त ही कर्णप्रिय होता है ----

म्हाँरा सांचोड़ा मोती हालो तो मरुधर देश ।
म्हाँरा मूंगोड़ा मोती हाले तो चालूँ मरुधर देश ।।
क्यूँ मोती तू अण मणो, थने राखुँ बेसर बीच
साजन रहे एक घड़ी तू रहे दिन तीस " रे म्हाँरा " ।।

अर्थात :- हे मोती तू इतना उदास - परेशान क्यों है,
मै तो तुम्हें नथ में रखती हूँ ।
मेरे पति तो एक घड़ी ही मेरे पास रहते हैं,
तुम तो मेरे पास तीसों दिन बने रहते हो ।

→ केसरिया बालम आओ नी पधारो म्हारे देश
साजन साजन मैं करुं साजन गए परदेश
गिणता गिणता गिस गई म्हारी आँग्ड़ियारी रेख ।
केसरिया ....
साजन प्रीत लगाए के परदेश मत जाए '
बसो हमारी नागरी हम मागें तू खाए "
केसरिया ....

मानव सृष्टि में संगीत के विशाल महासागर में से मोती समान राग मांड अप्रतिम सुन्दर राग है यह.राजस्थान के जन जीवन में बसा हुआ है, जो अपनी संस्कृति का अनमोल रत्न है ।

प्रस्तावित शोध प्रबंध में ---- मांड का विकास, प्रकार, जन - जीवन पर प्रभाव, ललितात्मकता, वर्तमान में महत्व, वर्तमान मांड गायकी, मांड गायकी की परम्परा, शास्त्रीय उपशास्त्रीय संगीत के परिप्रेक्ष्य में मांड, वर्तमान मांड गायकों का साक्षात्कार एवं ऑडियो रेकोर्डिंग, विभिन्न मांड गीतों की स्वरलिपि का संयोजन --- जैसे विभिन्न पासों को जानने और उजागर करने की ओर मेरा विनम्र प्रयास है ।

प्रीति शर्मा

: सन्दर्भित ग्रन्थों की सूची :

क्र.सं.	ग्रन्थ	लेखक
१.	भारतीय संस्कृति	डा. प्रीति गोयल
२.	प्राचीन भारत में संगीत	डा. धर्मावति श्रीवास्तव
३.	लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन	डा. कुलदीप
४.	राजस्थानी भाषा साहित्य संस्कृति	डा. कल्याण सिंह शेखावत
५.	जब निमाड़ गाता है	श्री रामनारायण उपाध्याय
६.	राजस्थानी, साहित्य, परम्परा और प्रगति	डा. सरनाम सिंह
७.	राजस्थानी लोक साहित्य	डा.मनोहर सिंह एवं श्री मोहनलाल
८.	राजस्थानी लोक गीत	डा. स्वर्ण लता अग्रवाल
९.	राजस्थानी लोक साहित्य सैद्धान्तिक विवेचन	डा.सोहन सिंह
१०.	लोक साहित्य और संस्कृति	दिनेश्वर प्रसाद जी
११.	राजस्थानी लोक गाथा का अध्ययन	डा.कृष्ण कुमार शर्मा
१२.	राजस्थानी साहित्य का इतिहास	डा. पुरषोत्तम मेनारिया
१३.	मरु भारती :- राजस्थान संस्कार सम्बन्धी लोक गीत	डा. गजानन सिंह
१४.	लोक गीतों की अन्तर्प्रान्तीय यात्रा	श्री सौभाग्य सिंह शेखावत
१५.	राजस्थानी लोक गीत	पूर्णिमा श्रीवास्तव जी
१६.	लोक गीतों में समाज	सूर्य करण पारीक